Volume 1; Issue 2
April to Jun 2025

E-ISSN: 3048-8699

International Journal of History and Culture

Peer Reviewed Indexed Refereed Journal

Quarterly International Research Journal

International Journal of History and Culture
E-ISSN: 3048-8699
https://www.journalofhistory.in/
Volume 1; Issue 2; April to Jun 2025; Page No. 40-50
Peer Reviewed, Indexed and Refereed Journal

आधुनिक युग में गांधी जी की स्वराज्य, स्वदेशी एवं सर्वोदय की कल्पना

डा0 सरिता कुमारी
शोध सहायक
इतिहास विभाग,
विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग

सारांश

गांधी जी की मूल कल्पना स्वराज्य, स्वदेशी एवं सर्वोदय में जिस किसी भी व्यक्ति, संस्था, अथवा अवधारणा के सम्पर्क में आए वे गांधी जी के व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। गांधी जी के संपर्क में आने के उपरांत उनके विचारों के असाधारण अर्थों तथा सार्थकता का क्रमबद्ध संग्रहण किया गया, उनके नवीन संदेशों एवं प्रेरणाओं ने लोगों को प्रेरित किया तथा गांधीजी के संपर्क में आने के बाद संस्थाओं की प्रासंगिता मे और अधिक वृद्धि हुई। गांधी के चिन्तन एवं विचारों की अत्यधिक प्रासंगिकता है, विशेष रूप से आधुनिक युग के मनुष्य के लिए। उनके सभी सिद्धान्त व तकनीक, जिनका आधार नैतिकता व आध्यात्मिकता के केंद्र बिंदु पर टिका हुआ है तथा हर समय के हर मानव के पुनरुत्थान से संबंधित है। इस प्रकार, एक व्यक्ति स्वयं समझ सकता है व एक अनुभव प्राप्त कर सकता है और यह अनुभव गांधी जी के शब्दों में, "ईश्वर को प्राप्त करना था ताकि मनुष्य परमात्मा हो सके। गांधी जी का दृष्टिकोण अच्छे व सर्वोत्तम जीवन के लिए एक मार्ग खोलता है तथा एक उच्च विचारों से युक्त मनुष्य प्रेम, न्याय व सत्य के प्रति निष्ठावान बन जाता है। पर इस प्रकार का गौरव व प्रतिष्ठा केवल मानव जाति की सेवा, विशेष रूप से निचले स्तर के लोगों के लिए कल्याणपूर्ण कार्य द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।"

विशिष्ट शब्द– स्वराज्य, स्वदेशी, सर्वोदय, कल्याणपूर्ण कार्य, प्रासंगिकता, नैतिकता।

भूमिका

स्वराज्य गांधी जी के विभिन्न विचारों में से एक विचार है। स्वराज्य शब्द का प्रयोग गांधी जी ने सर्वप्रथम 3 नवम्बर, 1905 को एक लेख के अंतर्गत किया था। 1903 में लन्दन से दक्षिण अफ्रीका वापस लौटते समय उन्होंने स्वराज्य संबंधी अनेक गम्भीर विचार व्यक्त किए। दक्षिण अफ्रीका में भारतीय शैली की हिंसा एवं उसके मूल स्वरूप के

प्रत्युत्तर में गांधी जी ने साप्ताहिक इंडियन ओपीनियन में क्रमबद्ध लेख लिखे, जिन्हें बाद में संकलित कर हिंद स्वराज्य नामक पुस्तक के रूप में पुनः प्रकाशित किया गया। हिंद स्वराज्य में गांधी जी ने सर्वप्रथम स्वराज्य संबंधी अपने विचार विस्तृत एवं स्पष्ट रूप से वर्णित किए। इस पुस्तक में वर्णित स्वराज्य संबंधी विचार गांधी जी के संपूर्ण जीवन में ज्यों के त्यों रहे सिवाए इसके कि समय के साथ इन्हें थोड़ा विस्तृत स्वरूप प्रदान किया गया।

स्वतन्त्रता आंदोलन के दौरान ब्रिटिश शासकों से राजनैतिक बिखराव व कटु सम्बन्धों के बाद गांधी जी ने 'स्वराज्य' की अवधारणा को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया और स्वतन्त्रता प्राप्ति के अन्तिम चरण में 'भारत छोड़ो' नारा अपने मूल स्वरूप में आ पाया। इसके बावजूद अभी भी ब्रिटेन से संबंध पूर्ण रूप से समाप्त करने के लिए गांधी जी को 'स्वराज्य' की अवधारणा में और अधिक विस्तार लाना था। आरम्भ में ब्रिटिश शासकों के लिए 'स्वराज्य' का महत्व ब्रिटिश साम्राज्य के समक्ष एक मजाक से अधिक नहीं था। बाद में गांधी जी द्वारा संचालित प्रथम असहयोग आंदोलन का उद्देश्य स्वराज्य प्राप्त करना था। गांधी जी के कथनानुसार, ***"हमें स्वराज्य चाहिए यदि संभव हुआ तो ब्रिटिश साम्राज्य के साथ और यदि आवश्यक हुआ तो उसके बिना"*** *(Swaraj within the Empire if possible and without if necessary)।*

गांधी जी की स्वराज्य संबंधी अवधारणा अंग्रेजी पदों, जैसे– फ्रीड्म (freedom) अथवा इण्डिपेन्डेंस (Independence) की तुलना में अत्यधिक विशाल एवं गम्भीर है। स्वराज्य की अवधारणा के नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों पक्ष हैं। इसके नकारात्मक पक्ष का आशय है–विदेशी शासन एवं इसके सभ्यता पर प्रभाव से सर्वथा मुक्त होना। सकारात्मक स्वराज्य का अभिप्राय किसानों, श्रमिकों, महिलाओं, सभी के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता से है ।

गांधी जी के अनुसार लोगों का स्वराज्य चार आयामों में विभक्त है। ये चार आयाम राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक तथ्यों द्वारा प्राप्त किए जाते हैं। गांधी जी ने इन चारों आयामों को 'स्वराज्य के चौराहे' के रूप में देखा। जब तक इन चारों आयामों को पूर्णतः सुव्यवस्थित नहीं किया जाता तथा सही ढंग से इनका समायोजन एवं सामंजस्य

नहीं किया जाता तब तक स्वराज्य की तस्वीर विकृत ही रहेगी। गांधी जी के शब्दों में, ***"जब तक इसके किसी भी कोण में असत्यता रहेगी तब तक यह अपनी सही आकृति प्राप्त नहीं कर सकता"*** *(It will be out of shape if any of its angles is untrue)।* गांधी जी के स्वराज्य का सर्वप्रथम राजनीतिक पक्ष ब्रिटिश साम्राज्यवाद से स्वतन्त्रता प्राप्त करना तथा राजनीतिक सत्ता ब्रिटिश सरकार के हाथों से निकाल कर भारतीयों के हाथों में सौंपना था। किंतु, उनका विश्वास था कि (जो कि सही भी था), ब्रिटिश दासत्व से मुक्ति दिलाकर तथा भारतीय शासन सत्ता भारतीयों के हाथों में सौंप देने मात्र से वास्तविक समस्या का हल नहीं निकलेगा।

उन्होंने स्वामित्व के मामले में लोकतन्त्रीकरण पर तथा व्यवहार में राजकीय सत्ता 'लोगों के लिए' होने पर बल दिया। उनके लिए स्वराज्य का अर्थ संप्रभु शक्ति का निर्माण लोगों द्वारा किया जाना था। राजनीतिक अर्थ में स्वराज्य का आशय है – वह सम्पूर्ण लोकतन्त्र, जिसमें रंग, प्रजातीय, लिंग, क्षेत्रादि संबंधी विषमताओं के लिए कोई स्थान नहीं होता। लोकतन्त्र में सम्पत्ति जनता की होती है, न्याय पूर्णरूपेण सस्ता व शीघ्र मिलता है, व बोलने, लिखने, पूजा करने व प्रेस की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है।

महात्मा गांधी का स्वराज्य वह राज्य है जहाँ समाज के सभी वर्ग समान होते हैं और उनमें किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं होता। उनके अनुसार, स्वराज्यवादी संविधान के अन्तर्गत प्रत्येक समुदाय को समान भाव से देखा जाएगा। गांधी जी का आर्थिक स्वराज्य लाखों श्रमिकों को पूर्ण आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान करता है। गांधी जी के विचारानुसार आर्थिक स्वराज्य का आरम्भिक उद्देश्य दरिद्रता दूर करना था। एक बार उन्होंने यंग इंडिया में लिखा था कि, ***"मेरे सपनों का स्वराज्य निर्धन व्यक्ति का स्वराज्य है।"*** गांधी जी के लिए आर्थिक स्वराज्य का महत्व निर्धनता, भूख, शोषण तथा अभावग्रस्तता को दूर करना था। गांधी जी ने स्वराज्य को राम राज्य का पर्याय माना। गांधी जी धर्म को दृढ़तापूर्वक व्यावहारिक मानते हुए उसे हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, सिख, यहूदी इत्यादि सभी के लिए एक समान मानते हैं। उनके राम राज्य का तात्पर्य हिंदू राज्य अथवा हिंदू धर्म से कभी नहीं था। उनके शब्दों में, ***"राम राज्य का अर्थ हिंदू राज्य नहीं है, अपितु मेरे विचार में राम राज्य ईश्वर का साम्राज्य एवं एक दैवी राज्य है।"*** गांधी

जी के स्वराज्य के दो नैतिक आयाम – आत्म–संयम एवं आत्म–नियम, महत्वपूर्ण मील के पत्थर हैं। गांधी जी ने सदैव कर्तव्यपालन को विशेष महत्व दिया। उनके लिए 'कर्तव्यपालन' व 'नैतिकता' एक विचारणीय व्यवहार है।

स्वदेशी की अवधारणा

स्वदेशी का अर्थ है – 'अपने देश का अथवा 'अपने देश में निर्मित', वृहद अर्थ में किसी भौगोलिक क्षेत्र में जन्मी, निर्मित या कल्पित वस्तुओं, नीतियों, विचारों को स्वदेशी कहते है। स्वदेशी अत्यंत प्राचीन अवधारणा है। शायद जब से धरती पर जीवन है, तभी से स्वदेशी का भाव और व्यवहार भी है। शायद स्वदेशी जीवों के व्यवहार की सहज प्रवृत्ति है। सभी मनुष्य–समाज तथा सभी प्राणी सहज ही स्वदेशी व्यवहार करते हैं। क्योंकि महात्मा गाँधी ने 14 फरवरी 1916 को मद्रास में ईसाई मिशनरी के एक सम्मेलन में दिए गए अपने भाषण में स्वदेशी की परिभाषा इस प्रकार दी थी– स्वदेशी वह भावना है, जिससे कि हम आसपास के परिवेश से ही अपनी अधिकतम आवश्यकताएं पूरी करते हैं और उनसे ही अधिकाधिक व्यवहार सम्बन्ध रखते हैं तथा स्वयं को उनका सहज अभिन्न समझते हैं, न कि दूरस्थ लोगों और वस्तुओं से स्वयं को जोड़ने लगते हैं । स्वदेशी की यह भावना जब होगी तब हम अपने पूर्वजों के धर्म को ही आगे बढ़ायेंगे, न कि किसी अन्य धर्म को अपनाने लगेंगे। अपने धर्म में जो वास्तविक कमी आ जाएगी. उसे सुधारेंगे। राजनीति में हम स्वदेशी संस्थाओं का ही उपयोग करेंगे और उनकी कोई सुस्पष्ट कमियां होंगी तो उन्हें दूर करेंगे। आर्थिक क्षेत्र में हम आसपास के लोगों तथा स्वदेशी परम्परा और कौशल द्वारा उत्पादित वस्तुओं का ही उपयोग करेंगे और उन्हें ही सक्षम तथा श्रेष्ठ बनायेंगे।

महात्मा गाँधी द्वारा दी गई स्वदेशी की इस परिभाषा को शायद आज और अधिक स्पष्ट करना पड़े या शायद उसे कुछ परिवर्तन या परिमार्जित करना पड़े। जो भी हो, इस पर गहरे विचारपूर्वक निश्चय करने की आवश्यकता है। स्वदेशी से गाँधी का आशय था "सीमित स्त्रोतों में सीमित साधनों का उपयोग, सीमित इच्छाओं के साथ करना ही स्वदेशी है।" स्वदेशी आंदोलन को पहचानने तथा अपनाने के लिए यह सबसे योग्य समय है और इसे अपनाकर ही हम अपने नैतिक पतन एवं आर्थिक शोषण को रोक सकते हैं। गाँधी ने भविष्यवाणी की थी कि भारत

स्वदेशी की भावना के द्वारा स्वतंत्र हुआ है और अब उसका आर्थिक विकास भी इसी भावना के द्वारा हो सकता है। उन्होंने कहा कि "स्वदेशी की भावना संसार के सभी स्वंतत्र देशों में है। स्वदेशी वही है जो शुद्ध स्वदेशी हो। किसी भी भारतीय को अपने देश की वस्तु का व्यवहार करने के लिए उपदेश करना पड़े तो यह उसके लिए शर्म की बात है।" स्वदेशी आंदोलन महात्मा गाँधी के स्वतंत्रता आंदोलन का केन्द्र बिन्दु हो गया था। उन्होंने इसे स्वराज की आत्मा भी कहा था। महात्मा गाँधी को औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध संघर्ष करने वाले योद्धा के रूप में देखा जाता है लेकिन गहराई से देखें तो उन्होंने न केवल स्वतंत्रता की लड़ाई लडी बल्कि उन्होंने हर समय भारतीय सभ्यता को श्रेष्ठता दिलाने का प्रयास भी किया और विश्व व्यवस्था के सामने भारतीय सभ्यता का प्रतिनिधित्व भी किया था। पश्चिमी सभ्यता के वर्चस्व वाले उस युग में गाँधीजी ने भारतीय सभ्यता को श्रेष्ठ बताते हुए उसे पूरी दुनिया के लिए एक विकल्प के रूप में पेश किया।

गाँधी जी ने तो स्वदेशी की जिन तीन शाखाओं (धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक) का उल्लेख किये हैं उसका विवेचन करते हुए कहते हैं कि हिन्दू धर्म अपनी बुनियादी में निहित इसी स्वदेशी की भावना के कारण स्थितिशील और फलस्वरूप अत्यन्त शक्तिशाली बन गया है। चूंकि वह धर्मान्तरण की नीति में विश्वास नहीं करता, इसीलिए वह सबसे ज्यादा सहिष्णु है। और आज भी वह अपना विस्तार करने में उतना ही समर्थ है, जितना उसने भूतकाल में था। कहा जाता है कि उसने बौद्ध–धर्म को खदेड़कर भारत से बाहर कर दिया। यह ठीक नहीं है। उसने उसे आत्मसात कर लिया। स्वदेशी की भावना के कारण हिन्दू अपने धर्म का परिवर्तन करने से इन्कार करता हो। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानता है। कारण यह है कि वह मानता है कि उसमें नये सुधारों का समावेश करके उसे पूर्ण बनाया जा सकता है। और मैंने हिन्दुत्व के विषय में जो कुछ कहा है वह मेरे विचारों में संसार के सभी बड़े–बड़े धर्मों पर लागू है। हिन्दू धर्म के बारे में यह विशेष रूप से सत्य है। यहाँ यह बात आ जाती है जिसे कहने को मैं कोशिश कर रहा हूँ। भारत में काम करने वाली बड़ी–बड़ी मिशनरी संस्थाओं ने भारत के लिए बहुत कुछ किया है और अब भी कर रही है, और भारत इसके लिए उनका ऋणी है। किन्तु मैंने जो कुछ कहा है

उसमें यदि कोई सार हो तो क्या ज्यादा अच्छा होगा कि वे परोपकार का अपना काम जारी रखते हुए धर्मान्तरण का काम बन्द कर दें। क्या ईसाइयत की भावना को पोषण की दृष्टि से यह अधिक अच्छी बात न होगी? में आशा करता हूँ कि आप मेरे इस कथन को अशिष्टता नहीं मानेगें। मैंने हृदय पूर्वक और विनम्रता से यह सुझाव सामने रखा है। इसके सिवा आप मेरी बात ध्यान से सुने, इसका मुझे कुछ अधिकार भी है। मैंने "बाइबिल को समझने का प्रयत्न किया है। मैं उसे अपने धर्मशास्त्र में गिनता हूँ। मेरे हृदय पर जितना अधिकार **"भगवद्गीता"** का है, लगभग उतना ही अधिकार **"सत्भव अन द माउण्ट"** का भी है। **"लीड, काइण्डली लाइट"** तथा अन्य अनेक प्रेरणा–स्फूर्ति, प्रार्थना–गीत मैं किसी ईसाई धर्मावलम्बी से कम भक्ति के साथ नहीं भाता है। मैं विभिन्न सम्प्रदायों के प्रसिद्ध ईसाई मिशनरियों के सम्पर्क में आया हूँ और उनसे प्रभावित भी हुआ हूँ। उनमें से अनेक आज भी मेरे मित्र हैं। इसलिए आप कदाचित स्वीकार करेंगे कि मैंने यह सुझाव किसी पूर्वग्रह–ग्रस्त हिन्दू की तरह नहीं दिया है, बल्कि धर्म के एक ऐसे विनम्र और निष्पक्ष विद्यार्थी के नाते दिया है जिसका ईसाइयत की ओर बड़ा झुकाव है। क्या सम्भव नहीं है कि **"सारी दुनिया में जाओ"**– इस संदेश की वास्तविक भावना को समझे बिना उसका संकीर्ण अर्थ किया गया है? में अपने अनुभव से कहता हूँ कि इससे कोई इन्कार नहीं करेगा कि ज्यादातर धर्म–परिवर्तन का तो धर्म के नाममात्र का ही सम्बन्ध होता है। कुछ तो हृदय के बजाय पेट के खातिर इस ओर प्रेरित होते हैं। और हर धर्मान्तरण के कारण कुछ–न–कुछ कटुता पैदा होती है, जो मेरी समझ में टाली जा सकती है। मैं फिर अनुभव के बल पर कहता हूँ कि जिसे **"नया जन्म"** कहा जाता है, हृदय परिवर्तन की वह घटना हर महान धर्म में संभव है। मैं जानता हूँ कि मैं एक बड़ी, नाजुक सी बात कह रहा हूँ। फिर भी मैं अपने भाषण के इस भाग के अन्त में हिम्मत के साथ यह कहना चाहता हूँ कि इस समय यूरोप में जो भयानक काण्ड चल रहा है, उससे तो यही प्रकट होता है कि शान्ति के पुत्र नागरथ के यीशु के सन्देश पर यूरोप में लगभग किसी ने कान नहीं दिया और सम्भव है कि अब पूर्व में प्रकाश डालना पडे।

आमतौर पर देखा जाये तो भारत में ऐसे बहुत कम गाँव हैं, जिनमें जुलाहे न हो। स्मरणातीत काल से हमारे गाँव में

किसान, जुलाहें, बढ़ई, चमार, कहार इत्यादि रहते आये हैं, किन्तु हमारे किसानों को दरिद्रता ने घेर लिया है और हमारे जुलाहों का व्यापार केवल गरीब लोगों के ही सहारे चलता है। इन्हें अगर हम हिन्दुस्तान की रूई से हिन्दुस्तान में कता सूत दे दिया करें तो हम इनसे अपनी जरूरत का कपड़ा बुनवा सकते हैं। शुरू में मुमकिन है कि वह कपड़ा मोटा हो, किन्तु लगातार कोशिश करते रहने से हम उन्हें इस लायक बना लेंगे कि वे अच्छे सूत से भी बुनाई कर सकें ऐसा करके हम अपने जुलाहों की दशा सुधारेंगे और अगर एक कदम और आगे बढ़ें तो हम अपने मार्ग को अपरिचित कठिनाईयों को सहज ही दूर कर सकते हैं। हम आसानी से अपनी स्त्रियों और बच्चों को सूत कातना और कपड़ा बुनना सिखा सकते हैं और अपने घरों में बने हुए कपड़ों से अधिक शुद्ध और कौन–सा वस्त्र हो सकता है? में अपने अनुभव से कहता हूँ कि इस तरह काम करने से हम बहुत सारी परेशानियों से बच सकेंगे, अपनी बहुत–सी जरूरतों को कम कर लेंगे और हमारा जीवन सुख और सौन्दर्य का समन्वय बन जायेगा। मेरे कामों में हमेशा यह दिव्य वाणी गूंजती रहती है कि किसी समय भारत में ऐसा जीवन एक वास्तविकता थी, लेकिन अगर इस प्रकार का प्राचीन भारत कवियों की कल्पना मात्र हो, तो भी कुछ हानि नहीं। क्या अब वैसे भारत का निर्माण करना आवश्यक नहीं है? क्या इसी में हमारा पुरुषार्थ निहित नहीं है? मैं हिन्दुस्तान भर में सफर करता रहा हूँ। मुझसे कहते है कि "हमें सस्ता कपड़ा नहीं मिलता, महँगा खरीदने की हमारी हैसियत नहीं। अनाज कपड़ा सभी महंगा है। हम क्या करें?" वे निराश होकर उसी से मरते हैं। मेरा धर्म है कि मैं उन्हें कुछ संतोषजनक उत्तर दूँ। हर विचारशील भारतीय के लिए यह बात असहनीय होना चाहिए कि हमारे देश का कच्चा माल यूरोप भेज दिया जाये और हमें उसके लिए भारी कीमत चुकानी पड़े। इसका अव्वल और आखिरी इलाज स्वदेशी ही है। हम अपनी रुई किसी के हाथ बेचने के लिए मजबूर नहीं हैं और जब हिन्दुस्तान में स्वदेशी की ध्वनि गूँज उठेगी तो कोई भी रूई–उत्पादक दूसरे मुल्क में कपड़ा बनाने के लिए अपना माल न बेचेगा। जब स्वदेशी का मन्त्र देश भर में व्याप्त हो जायेगा तब हर एक आदमी यह सोचने लगेगा कि जिस देश में रूई पैदा होती है उसकी ओटाई–तुनाई, कताई–बुनाई उसी देश में क्यों न की जाय ? और जब स्वदेशी का

मन्त्र हर एक कान में पहुँच जायेगा तो भारत के आर्थिक उद्धार की कुंजी करोड़ों आदमियों के हाथों में पहुँच जायेगा। इस बात को सीखने के लिए हमें सैकड़ों वर्षों का समय नहीं चाहिए। जब धर्म का बोध जाग उठता है तो लोगों के विचार क्षणभर में बदल जाते हैं। इसकी केवल एक अनिवार्य शर्त है– निःस्वार्थ त्याग। त्याग और बलिदान का भाव इस समय भारत में व्याप्त है। यदि हमने इस उत्तम अवसर पर–स्वदेशी का प्रचार न किया तो निराशा में ही हाथ मलते रह जायेंगे। ऐसे प्रत्येक हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई और यहूदी से जो भारत को अपना देश समझता है मैं प्रार्थना करता हूँ कि वह स्वदेशी का व्रत ले और दूसरों से भी लेने को कहे। मेरे नम्र विचार में अगर हम अपने देश के लिए इतना भी नहीं कर सकते हैं वे दख कि ऐसी स्वदेशी में विशुद्ध अर्थनीति निहित है। मुझे आशा है कि प्रत्येक स्त्री–पुरुष' इस नम्र निवेदन पर गम्भीरता के साथ विचार करेगा। अंग्रेजी आर्थिक व्यवस्था की नकल करने का परिणाम हमारे लिए विनाशकारी होगा।

सर्वोदय की अवधारणा

सर्वोदय शब्द का मूल अन्त्योदय की कल्पना में है। सबसे नीची श्रेणी के जो है उसका भी अन्तिम व्यक्ति का भी उदय इसमें में है। सारी दुनिया के उदय में कमजोर, भंगी, गरीब, शोषित का उदय सबसे पहले होना चाहिए। सर्वोदय में अंत्योदय आ जाता है। केवल अंत्योदय शब्द में यह भाव वह आता है कि बाकी के लोगों का उदय हो चुका है लेकिन ऐसा नहीं है। इस दुनिया में सबका उदय होना बाकी है। किसी के घर में चूल्हा जलता ही नहीं है तो किसी के घर में चूल्हें में रोटियां जल जाती हैं। इस लिए सर्वोदय सबका उदय चाहता है जिसमें सम्पन्न और विपन्न दोनों का उदय सम्मिलित है। ***विनोबा*** कहते है सम्पन्न का उदय नैतिक है आ ैर विपन्न का उदय भौतिक यानी उदरपूर्ति है। गांधी ने इसलिए सम्पन्न के लिये संरक्षण सिद्धान्त और विपन्न के लिये ग्राम स्वराज के सिद्धान्त का विचार दिया है। विना ेबा इन दोना ें में सामंजस्य स्थापित कर सम्पन्न–विपन्न का उदय मानते है। उनके अनुसार सम्पन्न व्यक्ति अनावश्यक सम्पत्ति सरंक्षक है उसे इस सम्पत्ति का ला ेकहित में व्यय करना चाहिए। इसलिए स्वहित में खर्च न कर लोकहित में अनावश्यक सम्पत्ति का व्यय करने के लिये नैतिक अभ्युत्थान की आवश्यकता है। विपन्न को उदय पूर्ति की आवश्यकता है, भोजन, आवास, वस्त्र और स्वास्थ्य की सुविधा उसके लिए अत्यन्त आवश्यकता है। उनके लिए भौतिक या शारीरिक स्तर का ही उदय आवश्यक है। इस लिऐ ***विनोबा*** कहते है सम्पन्न तो पहले से ही गिरे है उनका नैतिक पतन हो गया है और जो विपन्न है अभी उठ ही नही पाये है अतः सर्वोदय दोनों के उदय की बात करता है।

औद्योगिक सभ्यता की व्यावहारिकता एवं संपोषणीयता पर आज प्रश्नचिन्ह खड़े हो रहे हैं, क्योंकि विकसित देश भी तेजी–मंदी, अवसाद, वेरोजगारी, मुद्रास्फीति आदि आर्थिक चक्र–जनित संकट में अपने अस्तित्व को बचाये रखने में अक्षम हैं। उच्च स्तरीय उपभोक्तावादी होने तथा सेना और आणविक अस्त्रों पर व्यय के कारण विश्व के 80ः संसाधनों का उपभोग 20ः जनसंख्या करती है, अतः विश्व अर्थव्यवस्था विषमता, अन्याय, नाभिकीय उत्सर्जन जनित प्रदूषण से संकटग्रस्त है। सत्ता – सम्पत्ति एवं भोग–विलास के पीछे भागना आधुनिक सभ्यता के त्रिदोष हैं। जो पश्चिमी सभ्यता के आइने में विश्व का आधुनिकीकरण के पक्षधर व्यवस्थापरक बुद्धिजीवी हैं। जो विश्व में घूम–घूम कर नये धर्म प्रचारकों की भाँति क्रान्ति का प्रचार करते हैं। इसके विपरीत ग्राम स्वराज्य की सभ्यता में स्वायत्तता, लोक–कल्याण एवं विभिन्न स्तरों पर न्याय के लिए प्रेरित होते हैं। इसका दृष्टिकोण प्राचीन सभ्यता की देन है। वास्तविक चुनौतियों और संघर्षों में से वरीयता या अधिमान्य मूल्यों को सजग रूप में खोजता रहा है।

औद्योगिक क्रान्ति के बाद केन्द्रित उद्योगों का जो महाकाय रूप विकसित हुआ है, उसी के फलस्वरूप राज्य सत्ता केन्द्रीय और सर्वव्यापी बन गयी है, जिसमें मानव का अस्तित्व ही या तो खो जाता है या प्रताड़ित होता है। आज तो ऐसी व्यवस्था चाहिए, जिसमें अत्यावश्यक बातों में एकता, शंकापूर्ण अवस्था में स्वतन्त्रता और सभी व्यवहारों में तितिक्षा। गाँधी जी के शब्दों में मानवीय जगत् असंख्य भावों के व्यापक होते चले जाने वाले वर्तुलों से सम्पन्न साग के समान रहेगा। यह रचना पिरामिड जैसी चौड़े आधार पर चोटी तक चढ़ती जाने वाली नहीं रहेगी। इसका केन्द्र रहेगा, व्यक्ति, जो गाँव के लिए मर मिटने को तैयार होगा। हर गाँव के समूह के हित के लिए अपना स्वार्थ पीछे रखेगा और इसी तरह आखिर सम्पूर्ण मानव समाज व्यापक इकाईयों का बनता चला जाएगा। गाँवों या उसके समूह का आकार क्या होगा? इस बारे में सहूलियत के साथ आजादी होगी। इकाईयों को जोड़ने वाली कड़ियाँ भी रहेंगी। जैसे–जैसे इकाईयों के समूह व्यापक बनते चले जायेंगे, प्रत्यक्ष सत्ता का अधिकार भी कम होता चला जायेगा। अन्त में विश्व व्यवस्था रहेगी नैतिक सत्ता सबसे ज्यादा ठोस और अधिक प्राथमिक इकाई में रहेंगे, जो धारण किये जायेंगे.... ग्राम सभा में। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यदि ग्राम सभा या पंचायत पर ही अनैतिकता, स्वार्थ बुद्धि, जातिवाद या सम्प्रदायवाद स्तर दाखिल हुआ तो सारा कारोबार लोकतंत्र का व्यंग्य चित्र ही खड़ा कर देगा। अतः ढाँचा कैसा भी हो, मनुष्य जब तक आन्तरिक जीवन में स्वस्थ एवं सन्तुलित और निःस्वार्थ और व्यापक नहीं बनता, तब तक बाहरी ढाँचे से लोकतन्त्र व्यवहार में चरितार्थ नहीं होगा।

निष्कर्ष

उपर्युक्त आंकलन से स्पष्ट है कि स्वराज्य, स्वदेशी एवं सर्वोदय की मूल कल्पना में गांधी जी के संदेशों की जीवन मूल्यों के प्रति गहराई एवं आवश्यकता को

समझने के लिए उनके आन्तरिक एवं सार्वभौमिक महत्व को विशेष रूप से देखना होगा। गांधीवादी सिद्धांतों को संगत बनाने हेतु उन्हें प्रौद्योगिकी प्रदर्शनों (techniques show) द्वारा विभिन्न स्तरों पर प्रचारित करना होगा। ये विभिन्न स्तर हैं– व्यक्ति, समाज, प्रांत, देश एवं संपूर्ण विश्व द्य यह सत्य है कि ये सिद्धांत बहुधा वास्तविक जीवन के साथ प्रयोग करने के संदर्भ में अव्यावहारिक सिद्ध होते हैं तथा अनेक मामलों में ये सिद्धांत वर्तमान समय की हमारी समस्याओं के सीधे समाधान की प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न करते हैं। फिर भी, उनके ये सिद्धांत मनुष्य के लिए दिशा–निर्देशन का कार्य करते हैं। महात्मा गांधी ने जिस प्रकार के जीवन का उपदेश दिया उसी प्रकार का जीवन उन्होंने स्वयं भी व्यतीत किया, अपने उद्देश्यों में सफलता अर्जित की तथा मानव जाति की भलाई करते हुए वे सम्पूर्ण जीवन एक सज्जन एवं सादगीपूर्ण व्यक्ति की भांति रहे। वर्तमान में गांधी जी के चिन्तन के विविध तथ्यों, जैसे– अहिंसा, शोषणरहित आर्थिक समाज एवं शुद्ध वातावरण आदि, पर विश्वभर के लोगों द्वारा सहमति व्यक्त की जाती है तथा उनकी प्रशंसा भी की जाती है। उनके संदेश एवं प्रासंगिकता केवल हमें आश्चर्यचकित करते हैं कि उनमें कुछ नहीं है।

संदर्भ सूची

- मोहनदास करमचन्द गांधी, गांधी वाण्ड्मय, खंड –28, (दिनांक – 8:10:1925), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1968, पृष्ठ 226 – 314
- वही, पृष्ठ 247
- रामचन्द्र गुहा, गांधी दी इयर्स दैट चैंज दी वर्ल्ड : 1914–1948, पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया, गुड़गांव, 2018, पृष्ठ 199
- वही, पृष्ठ 247
- एम. के. गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1957, पृष्ठ 195
- गांधीजी, हिन्द स्वराज्य, अमृतलाल ठाकोरदास नाणावटी (हिन्दी अनुवाद), नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1949, पृष्ठ 44
- गांधीजी, हिन्द स्वराज्य, अमृतलाल ठाकोरदास नाणावटी (हिन्दी अनुवाद), नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1949, पृष्ठ 221

- गांधीजी, मेरे सपनों का भारत, आर. के. प्रभु (संग्राहक) नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1960, पृष्ठ 135
- वही, पृष्ठ166
- पी. सी. राय चौधरी, गजेटियर ऑफ इण्डिया, बिहार, रांची, 1970, पृष्ठ 112
- वही, पृष्ठ 131 – 39
- जय एस. सिंह, महात्मा गांधी के विधिशास्त्रीय सिद्धांतः सत्य, अहिंसा और प्रेम, दिशा इंटरनेशनल पब्लिसिंग हाउस, ग्रेटर नोयडा, 2018, पृष्ठ 187
- वही, पृष्ठ 194
- गांधी, एमके ग्रामीण विकास के लिए गांधीवादी दृष्टिकोण, लोना वाला में आयोजित संगोष्ठी कार्यवाही 12–14 नवंबर 1984 पृष्ठ 154
- वही, पृष्ठ 158
- परमेश्वरी दयाल, 1986, गांधीयन अप्रोच टू सोशल वर्क, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, पृष्ठ 126
- ग्रेग, रिचर्ड बी., गाँधी, व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1966 पृष्ठ 321
- वही, पृष्ठ 126
- अय्यर, राघवन, द मॉरल एण्ड पॉलिटिकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1973, पृष्ठ 128
- वही, पृष्ठ 130
- आचार्य, नन्दकिशोर, सभ्यता का विकल्प : गाँधी दृष्टि का पुनराविष्कार, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 1995